महात्मा गाँधी का शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में विवेचना

डॉ0 माईकल
स्नातकोत्तर गाँधी विचार विभाग तिलकामाँझी भागलपुर,
विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार
Email : drmaikalbh@gmail.com

सारांश

शिक्षा किसी भी समाज को 'सभ्य' बनाने का महत्वपूर्ण माध्यम है। इसके बिना किसी भी समाज को सभ्य और उन्नत नहीं बनाया जा सकता। 'शिक्षा समाज का प्रतिबिम्ब होती है, उसी के माध्यम से उसके लक्ष्य व जीवन प्रणाली पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होते रहते हैं। इसका सीधा अभिप्राय है कि जैसी शिक्षा व्यवस्था होगी वैसा ही समाज बनेगा। इस मायने में समाज का वर्तमान और भविष्य बहुत कुछ शिक्षा पर ही निर्भर करता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का व्यक्तित्व और कृतित्व आदर्शवादी रहा है। उनका आचरण प्रयोजनवादी विचारधारा से ओतप्रोत था। संसार के अधिकांश लोग गांधी को महान राजनीतिज्ञ एवं समाज सुधारक के रूप में जानते हैं। पर उनका यह मानना था कि सामाजिक उन्नति हेतु शिक्षा का एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अतः गांधीजी ने जो शिक्षा के उद्देश्यों एवं सिद्धांतों की व्याख्या की तथा प्रारम्भिक शिक्षा योजना उनके शिक्षा दर्शन का मूर्त रूप है। भारत में बच्चों को 3एच की शिक्षा अर्थात मस्तिष्क, हाथ, और हृदय की शिक्षा दी जा सके। शिक्षा उन्हें स्वावलंबी बनाये और वे देश को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकें। शिक्षा वह हथिहार है, जिससे दुनिया बदली जा सकती है। शिक्षा का लक्ष्य विद्यार्थी को आदर्श नागरिक, आदर्श देशभक्त और परिवार, समाज तथा राश्ट्र के लिए उसे एक रत्न बनाना है। गांधी शिक्षा को आध्यात्मिक लक्ष्यों की सिद्धि से जोड़ते हैं, लेकिन उनकी आध्यात्मिकता जगत् से पलायनवादी नहीं है। 'आर्थिक नींव से हीन आध्यात्मिकता लंगड़ी है।' गांधी शिक्षा को कमाई का जरिया मानने को अनुचित मानते हैं तथा शिक्षा को ध र्म–नैतिकता से जोड़ना आवश्यक बताते हैं, तभी शिक्षा सम्पूर्ण मनुष्य निर्माण करने का उत्तम साधन बन सकेगी। आज संपूर्ण विश्व जिन चुनौतियों का सामना कर रहा है, उनसे यह बात धीरे–धीरे ज्यादा स्पष्ट होती जा रही है, "यदि पाश्चात्य सभ्यता आज स्थायी संकट का सामना कर रही है, तो यह कहना गलत नहीं होगा कि उसकी शिक्षा में ही कहीं कोई दोष है।"इस अर्थ में प्रचलित शिक्षा को पूर्णतः निर्दोष नहीं माना जा सकता है।

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 18.02.2020
Approved: 28.04.2020

डॉ0 माईकल

महात्मा गाँधी का शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में विवेचना

RJPP 2020,
Vol. XVIII, No. 1,
pp.060-067
Article No. 006

Online available at *:*
https://anubooks.com/?page_id=6391

प्रस्तावना

वस्तुतः वर्तमान सभ्यता या आधुनिक सभ्यता की प्रचलित शिक्षा व्यवस्था आज के अंतर्विरोधों को दूर करने में असमर्थ साबित हो रही है। भारत में वर्तमान समय में जो शिक्षा दी जा रही है 'वह शिक्षा विदेशियों द्वारा स्थापित की गई, जो इस देश में धर्म प्रचार व अपना शासन चलाना था। बाद में यहाँ के निवासियों को साक्षर करना, कुछ लोगों को नौकरियाँ देना, अपनी सभ्यता व संस्कृति में ढालना तथा आधुनिक युग के ज्ञान–विज्ञान की जानकारी करना था।'[1] यह बात तो भारत में अंग्रेजी शिक्षा के जनक मैकाले ने स्वयं कबूल भी की है। आधुनिक अर्थशास्त्र के जनक एडम स्मिथ की स्पष्ट मान्यता थी कि, "जो कि राज्य का निम्न स्तर के लोगों के लिए शिक्षा का प्रबंध करने से कोई लाभ प्राप्त नहीं होगा, फिर भी उसे इस ओर ध्यान देना चाहिए, क्योंकि उन्हें पूर्णतः निरक्षर रखना उचित नहीं है। वे जितना ज्यादा शिक्षित होंगे, उतने ही कम जोशीले और अंधविश्वासी होंगे; भ्रांतियां अज्ञानी राष्ट्रों में भयंकर अव्यवस्था उत्पन्न करती हैं। मूर्ख और अज्ञानी लोगों की अपेक्षा साक्षर और बुद्धिमान लोग अधिक विनम्र और व्यवस्थित होते हैं।"[2]

गुलामी की व्यवस्था को टिकाए रखने के लिए "स्कूली शिक्षा का विकास ब्रिटिश आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ। पूंजीवादी काल में (1800 के बाद) इसका अर्थ था कि भारतीयों को ब्रिटिश नौकरशाही के ढांचों के संचालन के लिए शिक्षित किया जाय जो भारतीय अर्थव्यवस्था और व्यापार पर अंग्रेजों के हित में नियंत्रण रख सकें और ब्रिटिश संस्कृति का प्रचार–प्रसार कर सकें।[3] ब्रिटिश साम्राज्य के बेहतरीन वफादार की भूमिका अदा कर सकें। शिक्षाशास्त्री कैली के अनुसार, "सार्वजनिक विध्यालय प्रणाली वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को स्थायी बनाने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण है ..बच्चे को शिक्षा दी जाती है, ताकि वह सत्ता के नीचे झुके, दूसरों की इच्छा के अनुसार काम करने की आदत डाले, फलतः उसके मन की कुछ ऐसी आदतें बन जाती हैं, जिनका उसके वयस्क जीवन में शासक वर्ग पूरा लाभ उठाता है।"[4]

भारत में अंग्रेजी शिक्षा लागू करने के बारे में मैकाले ने स्पष्ट कहा था, "भारत मे अंग्रेजी शासक वर्ग द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। सरकार में कार्यरत उच्च वर्ग के भारतीय भी इसी भाषा को बोलते हैं। यह पूर्व के समुद्रों में सभी जगह व्यापार की भाषा बनने वाली है। यह दो महान उभरते हुए यूरोपीय समुदायों, दक्षिण अफ्रीका और आस्ट्रेलिया की भाषा भी है; ये दोनों समुदाय प्रतिवर्ष अधिक महत्त्वपूर्ण और हमारे भाररतीय साम्राज्य के अधिक नजदीकी संबंधी बनते जा रहे हैं... हमें चाहिए कि हम ऐसे वर्ग का निर्माण करें, जो हमारे और हमारे असंख्य शासित जनों के बीच दुभाषिए का काम कर सकें.... ऐसे व्यक्तियों का वर्ग, खून और रंग से भारतीय, किन्तु अभिरुचि, विचारों, आदर्शों और मस्तिष्क से अंग्रेज होगा।"[5] मैकाले ने उसी समय यह स्वीकार किया था, "मैं एक सम्पूर्ण समाज को अफीम खिलाने की, अपने हाथों में ईश्वर द्वारा सौंपे हुए एक महान राष्ट्र को सिर्फ इसलिए मदहोश और पंगु बना देने की सम्मति कभी न दूँगा कि वह हमारे नियंत्रण में रहने के अधिक उपयुक्त बन जाए। उस सत्ता का क्या मूल्य, जिसकी नींव दुर्गुणों पर अज्ञान पर और दुख–दैन्य पर रखी गई हो; जिसका संरक्षण हम उन अत्यन्त पवित्र कर्त्ताव्यों

को भंग6 करके ही कर सकते हों, जिनके लिए हम शासकों की हैसियत से शासितों के प्रति जिम्मेदार हैं; और जिन कर्त्तव्यों के रूप में साधारण से अधिक राजनीतिक स्वतंत्रा और बौद्धिक प्रकाश के धनी होने के नाते हमें उस जाति का ऋण चुकाना है, जो तीन हजार वर्ष के निरंकुश शासन और पुरोहितों की धूर्त्तता से अधः पतित हो गई है? अगर हम मानव जाति के किसी अंग को अपने ही बराबर स्वतंत्रता और सभ्यता प्रदान करने को तैयार नहीं हैं; तो हम व्यर्थ ही स्वतंत्र हैं, व्यर्थ ही सभ्य हैं।"

मार्टिन कारनाय ने पूंजीवादी शिक्षा व्यवस्था के बारे में ठीक ही कहा है कि, "परंपरागत आर्थिक सिद्धांत मान लेता है कि पूंजीवादी संगठन, खास तौर से उत्पादन का सोपानात्मक या सीढ़ीनुमा ढांचा, जो संपति के निजी स्वामित्व पर आधारित है, व्यक्तियों का सर्वोत्तम पारस्परिक संबंध है। जब समाज अत्यधिक पूंजीवादी बन जाता है, उत्पादन के सामाजिक संबंध श्रेष्ठता की चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं। आम लोगों की स्कूली शिक्षा का साधन है, जिसके द्वारा अज्ञानी और असभ्य लोगों को संगठित कर पूंजीवादी व्यवस्था के समर्थन के लिए उसके अंर्तगत नीचे दर्जे की भूमिकाओं को निभाने के लिए तैयार किया जाता है; इस विश्लेषण के अंर्तगत स्कूली शिक्षा का यह सकारात्मक योगदान है।"[7]

गांधी ने वर्तमान शिक्षा पद्धति की कमियों को उजागर करते हुए स्कूलों के बारे में कहा था, "मेरे विचार में हमारे स्कूल और कॉलेज सरकारी नौकर ढालने के कारखाने हैं।[8] गांधी जी यूरोप एवं भारत में अपनाई गई शिक्षा पद्धति की विषमता की ओर ध्यान दिलाया "यूरोप में व्यक्ति की विशेष प्रतिभा को ध्यान में रखकर शिक्षा दी जाती है। एक ही बात तीन विभिन्न देशों में अपने–अपने देश की संस्कृति एवं प्रतिभा को ध्यान में रखकर तीन विभिन्न तरीकों से सिखाई जाती है। केवल हमलोग ही अंग्रेजों की पद्धति का अंधाधुंध अनुकरण करने में आनंद मानते हैं। वर्तमान प्रणाली का उद्देश्य ही इतना है कि हम पश्चिम की हु–ब–हु नकल करें। इसमें अजीब भी कुछ नहीं है। हमने अपने मामले उन अंग्रेजों के सुपुर्द कर रखे हैं, जिन्होंने कभी हमें जानने की कोशिश नहीं, की; यह उसका स्वाभाविक परिणाम है बेचारा मैकाले; वह क्या कर सकता था; वह हृदय से विश्वास करता था कि हमारा संस्कृत साहित्य अंधविश्वासों से भरा है। वह वास्तव में यही सोचता था कि पश्चिमी संस्कृति के रूप में वह हमें कुछ पथ्य दे रहा है। इस तरह मैकाले ने अनजाने जो हमारा विनाश किया, उसके लिए हम उसे भला–बुरा न कहें। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने के कारण हम सारी मौलिकता खो बैठे हैं। हमारी स्थिति बिना पंखों के पक्षियों जैसी है। हमारी उच्चतम अभिलाषा यह रहती है कि हम कहीं क्लर्क या संपादक बन जाएं। वर्तमान शिक्षा पद्धति में हममें से कोई एक भले ही लार्ड सिन्हा बन जाए परंतु हममें से प्रत्येक को बहुत हुआ, तो भारी–भरकम विदेशी शासनतंत्र का एक पुर्जा बनाने के लिए ही तैयार किया जा रहा है।"[9]

स्कूली शिक्षा सामाजिक भूमिकाओं का प्रकट आवंटक है, स्कूल में कामयाबी उच्चतर सामाजिक हैसियत पाने का एक उपाय है (दूसरा तरीका वास्तविक संपदा का स्वामित्व है) स्कूल में सफलता या विफलता को वैयक्तिक उत्तरदायित्व बना दिया गया हैः यदि बच्चे का कार्य

संतोषजनक नहीं है, तो यह उसका वैयक्तिक दोष है, न कि यह स्पष्ट तथ्य कि सफल होने के लिए एक वर्ग का अवसर दूसरे की तुलना में वास्तव में न्यूनतम है। उत्तरदायित्व का यह वैयक्तिकरण वर्गीय पहचान और अंतर्वर्गीय शत्रुता को विकीर्ण कर देता है। सामंती समाज में परिवार और चर्च की भांति, पूंजीवादी समाजों में स्कूल, अर्थतन्त्र और समाज में विभेदीकृत भूमिकाओं की स्वीकृति को, मानवीय संबंधों के संगठन का 'न्यायोचित' और 'सही' तरीका बताकर, परिपुष्ट करता है।[10]

गांधी ने वर्तमान शिक्षा पद्धति को अस्वीकृत करते हुए कहा था, "शिक्षा की वर्तमान पद्धति, एक नितान्त अन्यायपूर्ण शासन के साथ संबंध होने के अतिरिक्त तीन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बातों में दोषपूर्ण है। 1. वह विदेशी संस्कृति पर आधारित है और इसमें स्वदेशी संस्कृति का सर्वथा बहिष्कार किया गया है। 2. यह हृदय और हाथ के विकास की उपेक्षा करती है, मात्र मस्तिष्क की उन्नति तक ही अपने आपको सीमित रखती है। 3.विदेशी माध्यम–द्वारा सच्ची शिक्षा असंभव है।"[11] सघन अंग्रेजी शिक्षा के बाद, शिक्षित व्यावहारिक दृष्टि से अपने परिवेश से कटकर अलग हो जाते हैं। व्यावहारिक उद्देश्यों के संदर्भ में, अपनी जीवन शैली, वेश, भूषा, भाषा और अभिरुचियों में मानसिक रूप से वे अंग्रेज बन जाते थे और जो अंग्रेजी शिक्षा से वंचित रह गए थे, उनके प्रति वे घृनाभाव रखते थे। यह बात साफ थी कि ऐसे व्यक्ति कभी निरक्षर जनता के समीप वापस नहीं लौट सकते थे।[12] इसलिए आज "इस बात की सख्त जरूरत है कि आजकल की इस तालीम की जगह एक अधिक कुदरती, अधिक काम की और अधिक सस्ती तालीम बच्चों को दी जाए, जो हर लड़के और लड़की को उसके लिए सबसे अच्छे सबसे दिलपसंद काम के काबिल बना देय वह तालीम, जो बच्चों को जीवन के ठीक–ठीक आदर्श बताए और हमारी मानव सभ्यता के इखलाकी और रूहानी वातावरण को बदल दें, इससे पहले कि हम बर्बाद हों।"[13]

प्रसिद्ध दार्शनिक और शिक्षाशास्त्री जे. कृष्णमूर्ति ने कहा है कि "शिक्षा का कार्य है कि वह सम्पूर्ण जीवन की प्रक्रिया को समझने में हमारी सहायता करे, न कि हमें केवल कुछ व्यवसाय या ऊंची नौकरी के योग्य बनाए।"[14] शिक्षा के अर्थ को और ज्यादा स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है– "शिक्षा का यह प्रमुख कार्य है कि वह आपमें उस मेधा का उद्घाटन करे जिससे आप इन समस्त समस्याओं का हल खोज सकें।... निस्संदेह यह मेधा वह शक्ति है, जिससे आप भय और सिद्धान्त की अनुपस्थिति में स्वतंत्रता के साथ सोचते हैं ताकि आप अपने लिए सत्य की, वास्ताविकता की खोज कर सकें। यदि आप भयभीत हैं, तो फिर आप कभी मेधावी नहीं हो सकेंगे। किसी भी प्रकार की महत्त्वाकांक्षा–फिर चाहे वह आध्यात्मिक हो या सांसारिक चिंता और भय को जन्म देती हैय अतः यह ऐसे मन को निर्माण करने में सहायता नहीं कर सकती, जो सुस्पश्ट हो, सरल हो, सीधा हो और दूसरे शब्दों में मेधावी हो। आप जानते है कि बचपन से ही आपको एक ऐसे वातावरण में रहना अत्यंत आवश्यक है, जो स्वतंत्रतापूर्ण हो। हममें अधिकांश व्यक्ति ज्यों–ज्यों बड़े होते जाते हैं, त्यों–त्यों ज्यादा भयभीत होते जाते हैं। हम जीवन से भयभीत रहते हैं, नौकरी के छूटने से, परम्पराओं से और इस बात से भयभीत रहते हैं कि पड़ोसी, पत्नी या पति क्या कहेंगे, हम मृत्यु से भयभीत रहते हैं। हममें से अधिकांश व्यक्ति किसी–न–किसी रूप में

भयभीत हैं और जहाँ भय है वहीं मेधा नहीं है। क्या यह संभव नहीं है कि हम बचपन से ही एक ऐसे वातावरण में रहें, जहाँ भय नहीं हो, जहाँ स्वतंत्रा हो–मनचाहे कार्य करने की स्वतन्त्रता नहीं, अपितु एक ऐसी स्वतन्त्रता, जहाँ जीवन की सम्पूर्ण प्रक्रिया समझ सकें। हमने जीवन को कितना कुरूप बना दिया है; सचमुच जीवन के इस ऐश्वर्य की, इसकी अनन्त गहराई और इसके अदभूत सौंदर्य की धन्यता तो तभी महसूस कर सकेंगे जब आप प्रत्येक वस्तु के खिलाफ विद्रोह करेंगे, संगठित धर्म के खिलाफ, परंपरा के खिलाफ और इस सड़े हुए समाज के खिलाफ, ताकि आप एक मानव की भांति अपने लिए सत्य की खोज कर सकें। अनुकरण करना शिक्षा नहीं है, शिक्षा है खोज, क्या यह सत्य नहीं है? आपके माता–पिता, आपके शिक्षक और आपके समाज ने जो कुछ कहा है, उसे मान लेना बड़ा आसान है। यह जीवित रहने का सुरक्षित और आसान मार्ग है। लेकिन ऐसा जीवन 'जीवन' नहीं है, क्योंकि इसमें भय है, ह्रास है, मृत्यु है। जिन्दगी का अर्थ है अपने लिए सत्य की खोज और यह तभी संभव है जब स्वतन्त्रता हो, जब आपके अंतर में सतत् क्रांति की ज्वाला प्रकाशमान हो। साधारणतया सुरक्षा में जीने का अर्थ है अनुकरण में जीना अर्थात् भय में जीना। सचमुच शिक्षा का यह कार्य है कि वह हममें से प्रत्येक को स्वतन्त्रता और निर्भयता से जीने के लिए सहायता करे।....आपको और आपके शिक्षकों को इस प्रकार Lor a r ki wo Z okr koj . k d sfuekZk d sfy , x hkh r ki wo Z fopkj d j uk gksxkA[15]

महात्मा गांधी ने शिक्षा का मतलब स्पष्ट करते हुए कहा है–"सच्ची शिक्षा वही है जो स्वतंत्रता का मार्ग प्रदर्शन कराती है। अर्थात् जो बंधन मुक्ति करे वही शिक्षा है, बंधन मुक्ति दो प्रकार की होती है। बंधन मुक्त का एक रूप तो वह है, जो किसी देश को विदेशी शासन से स्वतन्त्रता दिला देता है। इस प्रकार की स्वतन्त्रता क्षणिक हो सकती है। बंधन–मुक्ति का दूसरा रूप स्थायी प्राप्त होता है। मोक्ष, जिसे हम परम धर्म कहते हैं, प्राप्त करने के लिए हमें सांसारिक दृष्टि से भी स्वतंत्र होना चाहिए। वह व्यक्ति, जो अनेक प्रकार की भय की भावनाओं से ग्रसित है, चरम मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता।"[16]

सैद्धांतिक अर्थ में गांधी में शिक्षाशास्त्री होने का दावा नहीं करते, किन्तु वे कहते हैं, "सच मानिए, इस विषय में मेरा अपना एक निश्चित मत है। मेरी समझ से तो ये तमाम पाठशालाएँ, औषधालय, पुस्तकालय, चिकित्सा संबंधी सहायता देने वाली समितियां वर्तमान परिस्थितियों में तो जनता की बेड़ियों को और भी मजबूत ही करती हैं। कृषक वर्ग एक जबरदस्त बेड़ी से जकड़ा हुआ है और आप उस बेड़ी को तोड़ने के बजाय उसमें और भी कड़ियाँ जोड़ने का काम करते हैं।...करोड़ों मनुष्य पशुओं से भी बुरी अवस्था में जी रहे हैं–रोटी के एक टुकड़े के लिए वे बराबर भयातुर और चिन्तित रहते हैं। उनकी स्थिति की सारी विडम्बना यह है की उन्हें कभी यह सोचने का भी समय नहीं मिलता कि वे क्या हैं। उन्हें क्या होना चाहिए। सर्दी, भूख, जीवधारियों के मन में रहने वाले सहज भय की भावना और कठोर श्रम का दुर्वह भर, ये सब विशाल हिम खंडों की तरह उनकी बौद्धिक प्रवृति के सभी मार्ग रोककर खड़े हैं, जबकि यही प्रवृति वह चीज है, जिसके कारण मानुषी पशु से भिन्न होने का दावा कर सकता है और जो जिन्दगी को जीने लायक बनाती है। आप उनके बीच अस्पताल और पाठशालाएँ खोलकर उनकी सहायता करने जाते हैं, लेकिन

इस तरह आप उन्हें उनकी बेड़ियों से मुक्त नहीं करते। उलटे आप उसकी बेड़ियों और भी कस देते हैं, क्योंकि इन चीजों के जरिये आप उनमें नई–नई इच्छाएँ और अनिच्छाएँ पैदा करके उनकी आवश्यकताओं को बढ़ाते हैं। उन्हें नगर, समितियों को दवाओं और पुस्तकों के लिए जो कुछ देना पड़ता है और इसके लिए उन्हें जो भी कठोर श्रम करना पड़ता है, सो इजाफा है। हाँ, मैं दवाओं के खिलाफ हूँ। इस विज्ञान की आवश्यकता रोगों को ठीक करने के लिए, बल्कि प्राकृतिक तत्त्वों का अध्ययन करने के लिए ही है। अगर किसी को किसी चीज को ठीक ही करना हो, तो वह रोग को नहीं, बल्कि रोग के कारण को ठीक करे।....मैं रोग को दूर करनेवाले विज्ञान में विश्वास नहीं रखता। सच्चे विज्ञान और सच्ची कला का उद्देश्य अस्थायी और व्यक्तिगत हित साधन नहीं होता। वे तो चिरन्तन और सार्वभौमिक उद्देश्य से परिचालित होते हैं। वे सत्य को, जीवन के असली अर्थ को पाना चाहते हैं, उन्हें ईश्वर की खोज रहती हैः आत्मा की तलाश रहती है। और जब उन्हें तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा करने और वर्तमान बुराइयों को दूर करने तक ही सीमित कर दिया जाता है, औषधालयों और पुस्तकालयों में कैद कर दिया जाता है, तब वे जीवन में सिर्फ उलझनें ही पैदा करते हैं, उसके मार्ग में बाधाएँ ही खड़ी करते हैं। वैज्ञानिक, लेखक और कलाकार अपने–अपने काम में पूरी लगन से जुटे हुए हैं। उनकी बदौलत जीवन की सुविधाएँ दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। हमारी शारीरिक मांगें बढ़ती जा रही है, लेकिन फिर भी सत्य हमसे बहुत दूर और मनुष्य अब भी सबसे अधिक स्वार्थी, उत्पीड़क और कुत्सिक प्राणी बना हुआ है। सारा आलम यह है, जो अधिकांश मानवों को पाटन के गर्त में लिए जा रहा है और उन्हें जीने के लिए सदा के लिए अक्षम बना रहा है। अक्षरज्ञान पर आधारित वर्तमान शिक्षा बेहतर मनुष्य का निर्माण कर पाने में अक्षम सिद्ध हो रहा है।[17]

गांधी ने शिक्षा को महज अक्षर ज्ञान मानने से इंकार करते हुए कहा, "शिक्षा से मेरा मतलब बच्चे या मनुष्य की तमाम शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का सर्वतोमुखी विकास है। अक्षर में से एक है। जिससे स्त्री–पुरुषों को शिक्षित किया जा सकता है। अक्षर ज्ञान को वे महज साधन मानते हैं, "शिक्षा–तालीम का अर्थ क्या है? अगर उसका अर्थ सैफ अक्षर ज्ञान ही हो,तो वह तो एक साधन जैसी ही हुई। उसका अच्छा उपयोग भी हो सकता है और बुरा उपयोग भी हो सकता है। एक शस्त्र से चीर–फाड़ करके बीमार को अच्छा किया सकता है। अक्षर ज्ञान का भी ऐसा ही है। बहुत से लोग उसका बुरा उपयोग करते है, यह तो हम देखते ही हैं। उसका अच्छा उपयोग प्रमाण में कम ही लोग करते हैं। यह बात अगर ठीक है, तो इससे यह साबित होता है कि अक्षर ज्ञान से दुनिया को फाड़े के बदले नुकसान ही हुआ है।[18]

आज अक्षर ज्ञान को ही सम्पूर्ण शिक्षा मान लिया गया है। हालांकि गांधी अक्षर ज्ञान के खिलाफ नहीं हैं। इस संबंध में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि, "मैंने अक्षर ज्ञान को बुरा नहीं कहा है। मैंने तो इतना ही कहा कि उस ज्ञान की हमें मूर्ति की तरह पूजा नहीं करनी चाहिए। वह हमारी कामधेनु नहीं है। वह अपनी जगह पर शोभा दे सकता है। और वह जगह यह हैः जब मायने और आपने अपनी इंद्रियों को बस में कर लिया हो, जब हमने नीति की नींव मजबूत बना ली हो, तब अगर हमें अक्षर पाने की इच्छा हो, तो उसे पाकर हम उसका अच्छा उपयोग कर सकते हैं। वह

शिक्षा आभूषण के रूप में अच्छी लग सकती है। लेकिन, अक्षर ज्ञान का अगर आभूषण के तौर पर ही उपयोग, तो ऐसी शिक्षा को लाजिमी करने की हमें जरूरत नहीं।[19] गांधी कहते हैं, "बच्चे के लिए अक्षर ज्ञान की अपेक्षा चारित्रिक शिक्षा की अधिक आवश्यकता है। भले ही पढ़ाई थोड़ी हो, पर हो विवेकपूर्ण। तभी शिक्षा सार्थक होगी।[20] उनकी मान्यता इस बात पर आधारित थी, "हम मनुष्य बनें, यह पहली शिक्षा है। मनुष्य ही अक्षर के योग्य है, जो लोग मनुष्यत्व खो बैठे हैं, उन्हें शिक्षित कर आप क्या पाएंगे? मात्र पुस्तकीय ज्ञान से मनुष्यत्व नहीं आता।[21]

आज सम्पूर्ण दुनिया, खासकर विकासशील देशों में साक्षरता पर इतना जोर दिया जा रहा है, जैसे यही शिक्षा की अंतिम साधना हो। गांधी ने साक्षारता के बारे में स्पष्ट कहा है,"मैंने साक्षारता को कभी भी मिथ्या महत्त्व देने की चेष्टा नहीं की है। मेरा यह अनुभव मेरे संतोष के अनुकूल सिद्ध हुआ है कि स्वयं साक्षरता नैतिक उत्थान में लेशमात्र भी सहायक नहीं होती चरित्र निर्माण साक्षारता से सर्वथा स्वतंत्र है।[22]

बोगोस्लोव्स्की ने शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा– "हमारा उद्देश्य छात्रों को इस योग्य बनाना है कि वे सम्पन्न तथा सारयुक्त जीवन बिता सकें, सर्वांगीण तथा रंगीन व्यक्तित्व का निमार्ण कर सकें, सुखी रहने के उल्लास का उपयोग कर सकें, यदि तकलीफें आएँ, तो गरिमा एवं लाभ के साथ उनका सामना कर सकें तथा इस उच्च जीवन को जीने में दूसरे लोगों की सहायता कर सकें।[23] पेस्टालाजी ने शिक्षा के बारे में कहा है, "मनुष्य की स्वाभाविक शक्तियों का प्राकृतिक, सर्वागिन और प्रगतिशील विकास ही शिक्षा है।" इसको एडिसन ने इस प्रकार व्यक्त किया है–'शिक्षा जब किसी श्रेष्ठ पुरुष के मस्तिष्क पर प्रभाव डालती है' तब उसके सभी सुप्त गुणों और पूर्णताओं को बाहर प्रकट कर देता है।[24] जे.डी. बटलर का मानना है, "शिक्षा इस प्रकार की क्रिया अथावा अध्यवसाय है, जिसके द्वारा मानव समाज के अधिक परिपक्व सदस्य कम परिपक्व सदस्यों में अधिक परिपक्वता लाने के निमित्त तथा उसके द्वारा मानव जीवन में सुधार लाने के लिए योगदान करने का प्रयत्न करते हैं।"[25] इस प्रकार शिक्षा का अर्थ और महत्व अत्यंत ही व्यापक है।

शिक्षा संबंधी उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि "यदि हम मानवीय वातावरण को प्राकृतिक अथवा भौतिक तथा मनोसामाजिक अथवा सांस्कृतिक रूपों में विभक्त करें, और प्रथम को पुनः भौतिक तथा तकनीकी एवं द्वितीय को बौद्धिक, सौन्दर्यात्मक, नैतिक तथा धार्मिक, इन रूपों में पुनर्विभक्त करें, तो हमें यह निष्कर्ष निकालना पड़ेगा कि किसी भी व्यापक मानी जाने वाली शिक्षा प्रणाली में इन सभी अंगों की सराहना करने के लिए हमें बालक को तैयार करना पड़ेगा। कोई भी शिक्षा प्रणाली, जो इनमें से किसी एक की भी उपेक्षा करती, वह अवश्यमेव अपूर्ण है।"

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. सिंघल, महेश चन्द्र; *भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएं*, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1971, पृ. 105
2. स्मिथ, एडम; *वेल्थ ऑफ नेशन्स*, माडर्न लाइब्रेरी, न्यूयार्क, 1937, पृ. 740

3. कारनोंय, मार्टिन; *संस्कृति साम्राज्यवाद और शिक्षा,* अनु. कृष्णकान्त मिश्र, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 1997, पृ. 20
4. हैरी, कैली; दि माडर्न स्कूल इन स्ट्रास्पेक्ट, 1952
5. नरुल्लाह एंड नायक; *हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इंडिया,* मैकमिलन पब्लिकेशन, लंदन,1961, पृ. 136
6. सं. गां. वां., खंड–1, पृ. 193
7. कारनोंय, मार्टिन; *सांस्कृति साम्राज्यवाद और शिक्षा,* वही, 1997, पृ. 301
8. गांधी, म. क. दि हिन्दू, 13 अगस्त, 1920
9. गांधी, म. क.;यंग इंडिया, 10 फरवरी, 1927, सं. गाँ. वां., खंड–33, पृ. 30–31
10. कारनोंय, मार्टिन; *सांस्कृति साम्राज्यवाद और शिक्षा,* वही, पृ. 302
11. गांधी, म. क.;यंग इंडिया, 1सितंबर, 1921
12. व्यास, के. सी.; *दि डेवलपमेंट ऑफ नेशनल एजुकेशन इन इंडिया,* बुकमाइन एसोसिएट्स, न्यूयॉर्क, 1951, पृ. 64
13. केला, भगवान दास; *जीवन धर्मः अहिंसा,* सर्वोदय ग्रंथमाला, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, पृ. 185
14. व्यास,के. सी.; *दि डेवलपमेंट ऑफ नेशनल एजुकेशन इन इंडिया,*वही, पृ. 64
15. कृश्णमूर्ति, जे.; *संस्कृति का प्रश्न, कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया,* राजघाट, वाराणसी, दूसरा संस्करण, 1984, पृ. 2–3
16. सं. गां. वा., खंड–18, पृ. 489–494
17. गांधी, म. क.;यंग इंडिया, 11 अगस्त, 1927, सं० गाँ० वां०, खंड–34, पृ. 347–48
18. गांधी, म. क.; *हिन्द स्वराज्य,* सर्व संघ प्रकाशन, वाराणसी, पाँचवाँ संस्कारण, जनवरी, 1996, पृ. 77
19. गांधी, म. क.; इंडियन ओपिनियन, 15 जुलाई, 1914
20. गांधी, म.क.; नवजीवन, 11जुलाई, 1920
21. गांधी, म.क.;यंग इंडिया, 16 जून, 1921
22. बोगोस्लोव्स्की, बी.बी.; द आइडियल स्कूल, द मेक्मिलन कं., न्ययार्क, 1936, पृ. 132
23. ओड़, लक्ष्मीलाल के.; शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राज्यस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 1973, पृ. 35
24. बटलर, जे० डी; फॉर फिलासफिज, हार्पर एण्ड ब्रोस, न्यूयार्क, 1951, पृ. 10
25. रस्क, आर.आर., द फिलाससफिकल बेसिक ऑफ एजुकेशन, दूसरा संस्करण, 1972, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. 164